

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 5: ऋषि मैत्रेय द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



हरिद्वार में, जहाँ स्वर्गीय गंगा पहली बार धरातल को स्पर्श करती है, शोकाकुल विदुर अन्ततः ऋषि मैत्रेय से अपना गहनतम प्रश्न पूछते हैं — और उत्तर में उन्हें इस समस्त ब्रह्माण्ड के आरम्भ की कथा प्राप्त होती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। तृतीय पुस्तक के इस पंचम अध्याय के साथ, कथा एक नया मोड़ लेती है। विदुर को उद्धव द्वारा दिया गया वह दीर्घ वृत्तान्त — श्रीकृष्ण के वृन्दावन-बाल्यकाल का, कंस के पतन का, महाभारत युद्ध का, यदुवंश के आसन्न अन्त का — अब समाप्त हो चुका है। विदुर, अभी भी अशान्त, अभी भी खोजते हुए, आगे बढ़ चुके हैं और अब एक नए गुरु के समक्ष खड़े हैं: ऋषि मैत्रेय, जो हरिद्वार में विराजमान हैं, जहाँ पावन गंगा स्वर्ग से मैदानों में उतरती है। इसके बाद जो होता है वह सम्पूर्ण भागवत में सबसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक मोड़ों में से एक है। विदुर अधिक कथाओं के लिए नहीं पूछते। वे इसके बजाय वह गहनतम प्रश्न पूछते हैं जो एक व्यथित आत्मा पूछ सकती है — मनुष्य वास्तविक और स्थायी सुख कैसे पाए? — और मैत्रेय का उत्तर, श्लोक-दर-श्लोक, इससे कम कुछ नहीं खुलता कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कैसे अस्तित्व में आया: केवल भगवान् से, जो सब कुछ से पहले विद्यमान थे, माया, महत्तत्त्व, त्रिगुणात्मक अहंकार, और पंच महाभूतों के माध्यम से, यहाँ तक कि उस क्षण तक जब ब्रह्माण्ड के नवसृष्ट रक्षक देवगण, स्वयं सृष्टि का कार्य पूर्ण करने में असमर्थ, हाथ जोड़कर भगवान् से वह दृष्टि और शक्ति माँगते हैं जो केवल वे ही प्रदान कर सकते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 5 (पंचम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ऊपर दिए गए शीर्षक में उल्लिखित, गीता प्रेस मूल संस्करण के अनुसार; दूसरे संस्करण का शीर्षक इससे भिन्न है (नीचे सत्यापन टिप्पणियाँ देखें)
- मुख्य वक्ता: विदुर (प्रश्नकर्ता) और ऋषि मैत्रेय (उत्तरदाता) — यह सम्पूर्ण वार्तालाप श्रीशुक (शुकदेव गोस्वामी) द्वारा राजा परीक्षित को सुनाया गया
- अध्याय के भीतर मुख्य श्रोता: विदुर; तथा बाह्य परिप्रेक्ष्य में, राजा परीक्षित और, उनसे परे, नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: हरिद्वार, वह स्थान जहाँ स्वर्गीय नदी गंगा पृथ्वी के मैदानों में उतरती है
- मुख्य विषय: सच्चे सुख के मार्ग के विषय में विदुर का प्रश्न तथा उस प्रक्रिया के विषय में जिससे भगवान् ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं; मैत्रेय का प्रारम्भिक उत्तर, जिसमें भगवान् की सृष्टि-पूर्व एकाकी अवस्था, माया का प्राकट्य, पुरुष, महत्तत्त्व, त्रिगुणात्मक अहंकार, पंच महाभूत, और नवसृष्ट देवगणों की सृष्टि-कार्य पूर्ण करने के लिए भगवान् से की गई प्रार्थना का वर्णन है
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 5, श्लोक 1–50 (गीता प्रेस क्रमांक)
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

विदुर हरिद्वार पहुँचते हैं

अध्याय शान्तिपूर्वक आरम्भ होता है, मानो पृष्ठ पलटा जा रहा हो। श्रीशुक राजा परीक्षित को बताते हैं कि विदुर — “कुरुओं में श्रेष्ठ,” जिनका हृदय अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से पहले ही शुद्ध हो चुका था — हरिद्वार पहुँचे हैं, वह स्थान जहाँ गंगा स्वर्गीय लोकों से मर्त्यलोक के मैदानों में पहली बार उतरती है। वहाँ उन्हें मैत्रेय मिलते हैं, एक अगाध ज्ञानवान् ऋषि, उसी पावन स्थान में विराजमान। विदुर की स्पष्ट सौम्यता

और सद्गुणों से प्रसन्न होकर, मैत्रेय उनका स्वागत करते हैं, और विदुर उनसे वह प्रश्न पूछते हैं जो पिछले चार अध्यायों में वर्णित सब कुछ के माध्यम से स्पष्टतः उनके हृदय में बन रहा था।

श्री शुक उवाच । द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरुणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।

क्षत्तोपसृत्याच्युतभावसिद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca dvāri dyu-nadyā ṛṣabhaḥ kurūṇāṁ maitreyam āsīnam agādha-bodham
kṣattopasṛtyācyuta-bhāva-siddhaḥ papraccha sauśīlya-guṇābhitr̥ptaḥ*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: विदुर, कुरुओं में श्रेष्ठ, जिनका हृदय अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से शुद्ध हो चुका था, हरिद्वार में विराजमान अगाध ज्ञानवान् ऋषि मैत्रेय के पास पहुँचे, और उनकी सद्गुणों तथा अन्य विशेषताओं से प्रसन्न होकर, उनसे यह प्रश्न पूछा। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, श्लोक 1)



अपने हृदय में अनुत्तरित शोक लिए, विदुर हरिद्वार में ऋषि मैत्रेय से अपना गहनतम प्रश्न पूछते हैं: एक व्यथित आत्मा वास्तविक और स्थायी सुख कैसे पाए? (श्लोक 2-4)

विदुर का प्रश्न: सामान्य कर्म शान्ति क्यों नहीं देता?

विदुर आरम्भ करते हैं, अधिक कथा-वृत्तान्त की माँग से नहीं, अपितु संसार की स्थिति की एक ईमानदार स्वीकारोक्ति से। लोग सुख के लिए परिश्रम करते हैं, वे कहते हैं, फिर भी वह परिश्रम कभी वह नहीं देता जिसका वह वचन देता है — कोई भी, केवल सकाम कर्म के द्वारा, कभी स्थायी सुख प्राप्त नहीं करता या अपने दुःख को अन्त तक नहीं पहुँचाता। इसके विपरीत, ऐसा कर्म बार-बार अधिक दुःख ही उत्पन्न करता है। यह एक विस्मयकारी स्थान है जहाँ से एक ऐसा अध्याय आरम्भ हो जो ब्रह्माण्ड-विज्ञान में समाप्त होगा: विदुर का आध्यात्मिक संकट पूर्णतः व्यावहारिक है, संसार के अन्तहीन, निष्फल प्रयास को देखने से उत्पन्न हुआ है।

वे इस निराशाजनक अवलोकन के मध्य भी मैत्रेय को आशा का एक कारण देते हैं: भगवान् जनार्दन (श्रीकृष्ण) के धन्य भक्तगण इस संसार में इसलिए विचरण करते हैं कि वे उन मनुष्यों पर अपनी कृपा बरसा सकें जिन्होंने दुर्भाग्यवश श्रीकृष्ण से अपना मुख फेर लिया है और जो अधर्म में लिप्त होकर अत्यन्त दुःखी हैं। यह, प्रभावतः, विदुर का शान्त अनुरोध है कि मैत्रेय उनके लिए भी ऐसे ही भक्त बनें — कि वे “उस धन्य मार्ग” को दिखाएँ जिसका अनुसरण करके लोग भगवान् को प्रसन्न करने में सफल होते हैं, ताकि भगवान् स्वयं भक्ति से शुद्ध हुए साधक के हृदय में निवास करें और वहाँ वह अत्यन्त प्राचीन ज्ञान प्रदान करें, वह ज्ञान जो सत्य की अनुभूति लाता है।

विदुर का व्यापक प्रश्न: निष्क्रिय भगवान् कैसे सृष्टि करते हैं?

भक्ति के मार्ग की याचना करने के बाद, विदुर अपने प्रश्न को और अधिक व्यापक बना देते हैं। भगवान् — तीनों लोकों के शासक, पूर्णतः स्वतन्त्र — जब वे भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं तो वास्तव में क्या कर्म करते हैं, वे पूछते हैं? स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी, वे सृष्टि के प्रारम्भ में इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को कैसे प्रकट करते हैं? ब्रह्माण्ड को दृढ़ आधार पर स्थापित करके, वे इसके भीतर सभी सृजित प्राणियों के लिए जीविका का साधन कैसे प्रदान करते हैं? और फिर — उस लय में जो भागवत के ब्रह्माण्ड-विज्ञान में बार-बार लौटती — वे, समुचित समय पर ब्रह्माण्ड को अपने ही हृदय की गुहा में समेटकर, अपनी योगमाया के साथ संयुक्त होने में कैसे लीन हो जाते हैं, केवल इसे पुनः सृजित करने और अन्तर्यामी के रूप में इसमें पुनः प्रवेश करने के लिए, एक होते हुए भी अनन्त विविध रूपों में प्रकट होकर?

विदुर अभी समाप्त नहीं हुए हैं। वे भगवान् के अवतारों के विषय में भी सुनना चाहते हैं — वे कारनामे जो, मानो केवल क्रीड़ामात्र, ब्राह्मणों, गौओं और देवताओं के कल्याण के लिए भौतिक जगत् में उनके विभिन्न अवतरणों के दौरान सम्पन्न किए जाते हैं; वे स्वीकार करते हैं कि उनका मन कभी तृप्त नहीं होता, चाहे वे इन अमृततुल्य कथाओं को कितना भी सुनें। और वे आगे भी पूछते हैं कि सर्वेश्वर भगवान् ने विभिन्न लोकों और उनके रक्षक देवताओं की सृष्टि किन सिद्धान्तों से की, साथ ही उस अन्धकार-क्षेत्र की भी जो लोकालोक नामक पर्वत से परे स्थित है, जहाँ विभिन्न कर्तव्यों से युक्त सभी वर्गों के प्राणी प्रकट होते हैं, और स्वयंभू भगवान् नारायण, ब्रह्माण्ड के रचयिता, ने प्रत्येक सृजित प्राणी को अपना विशिष्ट स्वभाव, कर्म, रूप और नाम कैसे प्रदान किया।

मूल संस्करण में संरक्षित एक टिप्पणी लोकालोक शब्द की व्याख्या करती है: सात समुद्रों के सबसे बाहरी भाग को घेरने वाला पर्वतों का एक घेरा या वलय, जो दृश्य जगत् को उससे परे स्थित अन्धकार-क्षेत्र से विभाजित करता है — क्योंकि सूर्य का प्रकाश केवल इस पर्वत-वलय के भीतर ही पड़ता है, इसलिए एक ओर प्रकाश है तो दूसरी ओर अन्धकार।

“मैं अन्य सभी धर्मों से ऊब गया हूँ”: विदुर की भक्ति-स्वीकारोक्ति

इसके बाद वह आता है जो सम्पूर्ण भागवत में विदुर द्वारा कहे गए सबसे व्यक्तिगत रूप से प्रकट करने वाले अंशों में से एक है। वे मैत्रेय को बताते हैं कि उन्होंने अपने समय में, स्वयं ऋषि व्यास के मुख से, उच्च (द्विज) वर्गों के साथ-साथ निम्न वर्गों के मनुष्यों के कर्तव्यों के विषय में बहुत कुछ सुना है। और फिर भी, वे स्पष्ट रूप से कहते हैं, वे अब इन अन्य सभी धर्मों से ऊब चुके हैं — भले ही वे तुच्छ सुखों के लिए सहायक हों — क्योंकि उन्होंने अपना एकमात्र आनन्द श्रीकृष्ण की कथाओं से प्रवाहित होने वाले अमृत-स्रोत में पाया है।

वे आगे बढ़ते हैं, अपनी ओर से एक छोटी परन्तु मार्मिक शिक्षा प्रस्तुत करते हुए: कौन, वे पूछते हैं, कभी श्रीकृष्ण की कथाओं से तृप्त हो सकता है, जिनके चरण समस्त पवित्रता के आश्रय हैं, जिनका गुणगान नारद जैसे ऋषियों द्वारा इस सभा जैसी सभाओं में किया जाता है? क्योंकि वे कथाएँ, मनुष्य के कानों की गुहा में प्रवेश करके, गृहस्थी के प्रति उस बन्धन को काट देती हैं जो अन्यथा एक आत्मा को जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र के भँवर में डाल देता है।

इसी सन्दर्भ में विदुर महाभारत के विषय में एक उल्लेखनीय अवलोकन करते हैं। यह, वे कहते हैं, भगवान् के गुणों का वर्णन करने के उद्देश्य से ही था कि ऋषि कृष्ण द्वैपायन — वेदव्यास, विदुर के अपने मित्र — ने वह महाकाव्य रचा। क्योंकि वहाँ भी, जबकि मनुष्य उसकी अनेक कथाओं में स्पष्टतः इन्द्रिय-सुखों में लीन रहते हैं, उनके मन अन्ततः बार-बार श्रीहरि की कथाओं की ओर आकृष्ट होते हैं जो उसमें बुनी गई हैं।

वह आकर्षण, विदुर कहते रहते हैं, जब एक भक्त हृदय में बढ़ता है, तो अन्य वस्तुओं के प्रति एक स्वाभाविक विरक्ति उत्पन्न करता है, और यह उस मनुष्य के समस्त दुःखों को शीघ्र समाप्त कर देता है जिसने श्रीहरि के चरणों के निरन्तर स्मरण से प्रवाहित होने वाले आनन्द का स्वाद चख लिया है। इसके विपरीत, वे कहते हैं, वे उन अज्ञानी मनुष्यों के लिए शोक करते हैं जिन्होंने अपने पाप के कारण श्रीहरि की कथाओं के प्रति अरुचि विकसित कर ली है — ऐसे मनुष्य इतने दयनीय हैं कि दयनीय व्यक्ति भी उन पर दया कर सकते हैं, क्योंकि काल की अधिष्ठात्री देवता क्षण-प्रतिक्षण उनके जीवन की निर्धारित अवधि को कम कर देती है, जबकि वे सर्वदा व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ चिन्तन में लगे रहते हैं।

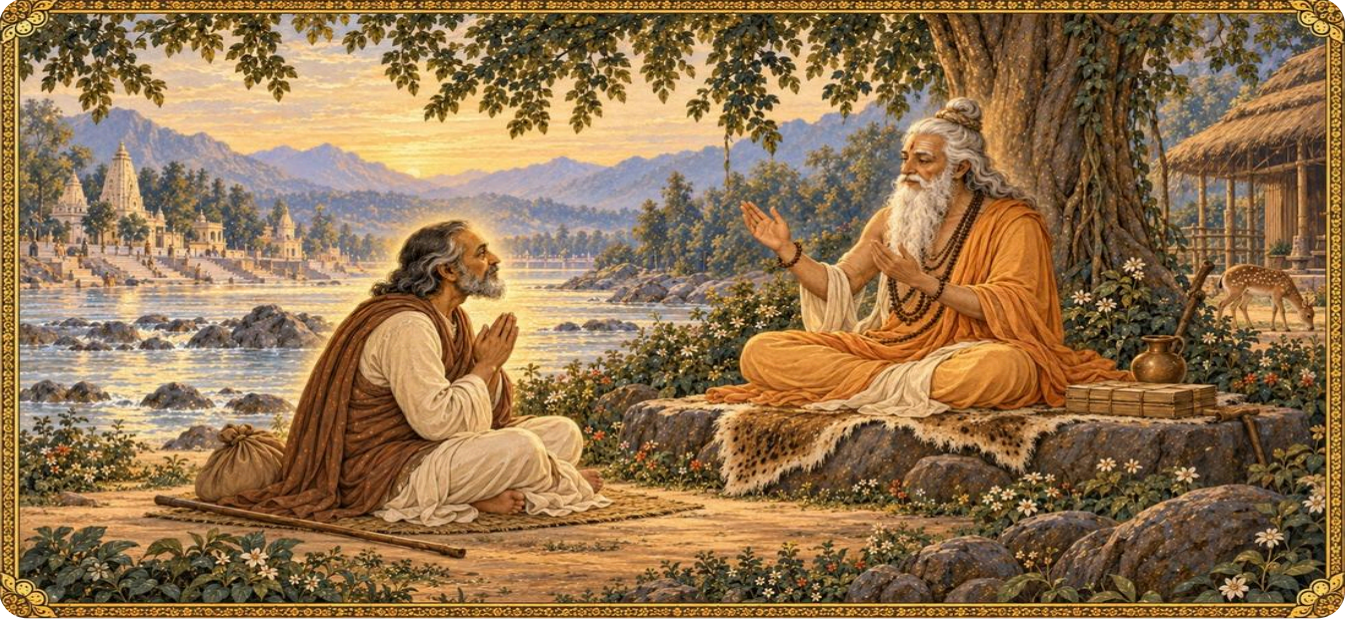
और इस प्रकार विदुर अपनी केन्द्रीय याचना पर पहुँचते हैं: “अतः, हे कुसारु-पुत्र मैत्रेय, पीड़ितों के मित्र, जैसे एक भ्रमर पुष्पों से मधु एकत्र करता है, वैसे ही कृपा करके सभी कथाओं का सार श्रीहरि की कथाओं के रूप में निकालें, जो कल्याण के दाता और पवित्र यश के आश्रय हैं, और उसे मुझे मेरे कल्याण के लिए सुनाएँ।” वे अपने प्रारम्भिक सम्बोधन को इस याचना के साथ समाप्त करते हैं कि जब भगवान् माया नामक अपनी शक्ति को धारण करके, सृष्टि, पालन और प्रलय के लिए भौतिक जगत् में अवतरित होते हैं, तब वे जो अलौकिक कारनामे करते हैं, उन्हें एक बार पुनः सुनाया जाए।

मैत्रेय उत्तर देने से पहले विदुर का सम्मान करते हैं

श्रीशुक परीक्षित को बताते हैं कि विदुर द्वारा इस प्रकार, समस्त मनुष्यों के परम कल्याण के लिए, पूछे जाने पर, पूजनीय ऋषि मैत्रेय ने उन्हें बड़ा सम्मान देते हुए उत्तर दिया। मैत्रेय के प्रारम्भिक शब्दों में जो उल्लेखनीय है वह यह है कि वे तुरन्त ब्रह्माण्ड-विज्ञान में प्रवेश नहीं करते। वे पहले, कुछ देर तक स्नेहपूर्वक, स्वयं विदुर की ओर मुड़ते हैं।

मैत्रेय उन्हें बताते हैं कि उन्होंने, यह उत्कृष्ट प्रश्न पूछकर, सम्पूर्ण मानवता को एक गहरे ऋण में डाल दिया है — क्योंकि उनका मन पहले से ही उस भगवान् में स्थिर है जो सामान्य इन्द्रिय-बोध से परे हैं, और उनकी अपनी कीर्ति इस प्रकार इस संसार में दूर-दूर तक फैलेगी। यह आश्चर्य की बात नहीं है, मैत्रेय आगे कहते हैं, कि विदुर ने इस प्रकार अपनी एकनिष्ठ भक्ति से ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीहरि को मोहित कर लिया हो — क्योंकि वे, आखिरकार, स्वयं ऋषि बादरायण, वेदव्यास से कम किसी आत्मा के पुत्र नहीं हैं।

फिर एक चौंकाने वाला रहस्योद्घाटन आता है। मैत्रेय प्रकट करते हैं कि विदुर वास्तव में पूजनीय यम के अतिरिक्त कोई और नहीं हैं, वही देवता जो मृत्यु की अध्यक्षता करते हैं और अपने कर्मों के अनुसार सभी प्राणियों को दण्ड देते हैं — ऋषि माण्डव्य द्वारा उच्चारित शाप के परिणामस्वरूप इस मानव जन्म में अवतरित हुए, और सत्यवती-पुत्र ऋषि व्यास द्वारा, व्यास के अपने दिवंगत सहोदर भ्राता विचित्रवीर्य, जो सत्यवती से ही जन्मे थे, की दासी एवं उपपत्नी के गर्भ से उत्पन्न। विदुर, मैत्रेय कहते हैं, इसके अतिरिक्त सदैव भगवान् और उनके भक्तों दोनों के प्रिय हैं — और यही कारण था कि, इस संसार से प्रस्थान करते समय, भगवान् ने स्वयं मैत्रेय को विदुर को ज्ञान सिखाने की आज्ञा दी थी। अब, अपने शिष्य का इस प्रकार सम्मान करने के पश्चात् ही, मैत्रेय कहते हैं कि वे भगवान् की उन लीलाओं का, जो उनकी योगमाया द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और संहार के लिए प्रकट होती हैं, यथाक्रम वर्णन करेंगे।



उत्तर देने से पहले ऋषि मैत्रेय विदुर का सम्मान करते हैं, यह प्रकट करते हुए कि उनका शिष्य ऋषि माण्डव्य के शाप से इस संसार में जन्मे देवता यम के अतिरिक्त कोई और नहीं हैं (श्लोक 18-21)।

सृष्टि से पूर्व: भगवान् अकेले

इसके साथ, अध्याय अपनी केन्द्रीय शिक्षा की ओर मुड़ता है। मैत्रेय आरम्भ के भी आरम्भ से प्रारम्भ करते हैं। सृष्टि से पूर्व, वे कहते हैं, यह ब्रह्माण्ड भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में विद्यमान नहीं था, जो स्वयं आत्मा हैं और सभी जीवों, व्यष्टि आत्माओं, के शासक हैं। आत्मा तब अनेक विषय और वस्तु के रूप में प्रकट नहीं हुआ था; क्योंकि यह भगवान् की अपनी इच्छा थी कि वे अकेले रहें।

भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः ।

आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥

bhagavān eka āsedam agra ātmātmanāṁ vibhuḥ ātmecchānugatāv ātmā nānā-maty-upalakṣaṇaḥ

अर्थ: भगवान्, जो सभी जीवों के स्वामी और शासक हैं, इस सृष्टि से पूर्व अपने ही स्वरूप में अकेले विद्यमान थे; और यह उनकी अपनी इच्छा के अनुसार था कि वे इस प्रकार अकेले रहे, इससे पहले कि नामों और रूपों की बहुलता प्रकट होती। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, श्लोक 23)

मैत्रेय एक विचित्र और सुन्दर विवरण जोड़ते हैं: भगवान् ने, उस अवस्था में, अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई, फिर भी किसी वस्तु को नहीं देख सके — क्योंकि वे उस समय पूर्णतः अकेले प्रकाशमान थे। उन्हें, मैत्रेय कहते हैं, ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे अस्तित्वहीन हों; क्योंकि उनकी सभी शक्तियाँ उस क्षण सुप्त पड़ी थीं, यद्यपि उनकी चेतना पूर्णतः जाग्रत थी। यह, प्रभावतः, शुद्ध, अभेदित सत्ता का वर्णन है, सृजनात्मक इच्छा के प्रथम स्पन्दन से भी पूर्व — भगवान् की चेतना अपनी पूर्णता में उपस्थित है, फिर भी उनकी कोई भी शक्ति अभी क्रियाशील नहीं हुई है।

फिर भी, पहले से ही पूर्ण होते हुए, भगवान् कभी सृष्टि करने के लिए क्यों प्रवृत्त होते हैं? यही वह प्रश्न है जिसे एक वैष्णव आचार्य साधारण कथा-वर्णन से आगे बढ़कर उठाएगा, और यही इस अध्याय के ब्रह्माण्ड-विज्ञान के भीतर छिपा वास्तविक भार है। सृष्टि से पूर्व भगवान् की एकाकिता किसी अभाव की एकाकिता नहीं है; यह उस पूर्ण सत्ता की एकाकिता है जो, विवशता से नहीं अपितु करुणा से, अपने उन असंख्य अंशभूत जीवों की अनुपस्थिति अनुभव करते हैं — वे व्यष्टि आत्माएँ जो पूर्व प्रलय के अन्त में उन्हीं में समाहित, सुप्त और विस्मृत पड़ी थीं। इस दृष्टि से, सृष्टि भगवान् की आवश्यकता नहीं, अपितु उनकी कृपा है: यह इसलिए की जाती है ताकि इन्हीं जीवों को पुनः वह क्षेत्र और वह अवसर मिल सके जिससे वे भगवान् के साथ अपने वास्तविक सम्बन्ध का स्मरण कर सकें और अपने घर लौट सकें। इस अध्याय में आगे वर्णित प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक देवता, मूलतः, इसी एक करुणामय प्रयोजन के लिए अस्तित्व में आता है (श्लोक 23-24)।



सृष्टि से पूर्व, भगवान् अकेले, तेजोमय और पूर्ण, विद्यमान हैं, उनकी क्रिया-शक्तियाँ सुप्त हैं जबकि उनकी चेतना पूर्णतः जाग्रत रहती है (श्लोक 23-24)।

माया, पुरुष, और जीव का बीज

यह भगवान् की सर्वद्रष्टा शक्ति ही है — जिसे यहाँ किसी वस्तु की खोज के रूप में वर्णित किया गया है — जिसे माया कहा जाता है, एक ऐसी शक्ति जो अपने स्वभाव से ही कारण और कार्य दोनों है। इसी माया की सहायता से, मैत्रेय विदुर से सीधे कहते हैं, सर्वशक्तिमान् भगवान् ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि की।

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ।

माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥ २५ ॥

sā vā etasya sandraṣṭuḥ śaktiḥ sad-asad-ātmikā māyā nāma mahā-bhāga yayedam nirmame vibhuḥ

अर्थ: भगवान् की वह शक्ति, जो पूर्ण द्रष्टा हैं, जो कारण और कार्य दोनों के स्वभाव की है, माया कहलाती है, हे परम सौभाग्यशाली विदुर; और इसी माया के माध्यम से सर्वशक्तिमान् भगवान् ने इस ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, श्लोक 25)

जब काल के प्रभाव से इस माया को संघटित करने वाले तीनों गुणों का सन्तुलन विचलित हुआ, मैत्रेय आगे कहते हैं, तब उस परात्पर भगवान् ने, जो अपने स्वरूप में आध्यात्मिक हैं, उसमें पुरुष के रूप में अपना ही अंश स्थापित किया: चिदाभास के रूप में अपना बीज, अर्थात् जीव। यही इस सम्पूर्ण वृत्तान्त का महत्त्वपूर्ण मोड़-बिन्दु है: वह क्षण जब भगवान् की अपनी अखण्ड पूर्णता पहली बार माया के क्षेत्र में अपना एक अंश विस्तारित करती है, इस प्रकार भौतिक सृष्टि की सम्पूर्ण प्रक्रिया को गति में स्थापित करती है।



जैसे ही काल के प्रभाव से तीनों गुणों का सन्तुलन विचलित होता है, परात्पर भगवान् अपने ही अंश, पुरुष को, माया के क्षेत्र में, ब्रह्माण्डीय प्रकृति में, बीज के रूप में स्थापित करते हैं (श्लोक 25-26)।

अव्यक्त से महत्तत्त्व तक

इस अव्यक्त — माया या प्रकृति — से, काल द्वारा प्रेरित होकर, महत्तत्त्व, ब्रह्माण्डीय बुद्धि का महान् सिद्धान्त, विकसित हुआ। मैत्रेय इसे अन्धकार (अर्थात् अज्ञान) का विनाशक बताते हैं; यह समझ के स्वभाव का है, और यह अपने भीतर, सूक्ष्म रूप में, उस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकट करने में सक्षम है जो अभी प्रकट होना है।

ततोऽभवन् महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ।

विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥ २७ ॥

*tato 'bhavan mahat-tattvam avyaktāt kāla-coditāt vijñānātmāma-deha-sthaṁ viśvaṁ vyañjaṁs
tamo-nudaḥ*

अर्थ: तत्पश्चात्, काल द्वारा प्रेरित होकर, महत्तत्त्व — ब्रह्माण्डीय बुद्धि का सिद्धान्त, अज्ञान के अन्धकार का विनाशक, समझ के स्वभाव का — इस अव्यक्त से विकसित हुआ, जो अपने भीतर, सूक्ष्म रूप में, आने वाले ब्रह्माण्ड को प्रकट करने में सक्षम था। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, श्लोक 27)

चिदाभास, तीनों गुणों, और काल के अधीन, यह महत् जब भगवान् की दृष्टि की परिधि में आया, तो यह ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने की विशेष इच्छा से स्वयं रूपान्तरित हो गया। महत्तत्त्व से, जब वह इस प्रकार रूपान्तरित हुआ, “अहम्” का सिद्धान्त, अर्थात् अहंकार, विकसित हुआ — जो अधिभूत (तत्त्वों से सम्बन्धित), अध्यात्म (आत्मा से सम्बन्धित) और अधिदैव (अधिष्ठाता देवताओं से सम्बन्धित) के स्वभाव का होते हुए, पंच स्थूल तत्त्वों, इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों दोनों) और मन का कारण बनता है।

त्रिगुणात्मक अहंकार और इन्द्रियों का जन्म

मैत्रेय स्पष्ट करते हैं कि यह अहंकार तीन विशिष्ट रूपों में प्रकट होता है: वैकारिक, जो सात्त्विक है; तैजस, जो राजसिक है; और तीसरा, जो तामसिक है। सात्त्विक अहंकार से, जब वह अपने स्वयं के रूपान्तरण से गुज़रा, मन उत्पन्न हुआ, साथ ही इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवगण भी, जो स्वयं पूर्णतः सात्त्विक स्वभाव के हैं, और जिनका कार्य इन्द्रियों की वस्तुओं को अनुभवकर्ता के समक्ष प्रकट करना है।

ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ, इसके विपरीत, केवल राजसिक अहंकार के विकार हैं; जबकि तामसिक अहंकार से अन्य सूक्ष्म तत्त्वों का स्रोत — शब्द से आरम्भ होकर — विकसित हुआ, जो, बदले में, आकाश का कारण है, वह तत्त्व जो, अपने सर्वव्यापी स्वभाव के कारण, स्वयं आत्मा (ब्रह्म) का एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी: पंच तत्त्वों का प्राकट्य

इसके बाद जो आता है वह भागवत के सबसे सावधानीपूर्वक संरचित अनुच्छेदों में से एक है, जो पंच स्थूल तत्त्वों के क्रमिक विकास का वर्णन करता है, प्रत्येक पूर्व तत्त्व की काल, माया और जीव के साथ संयुक्त क्रिया से उत्पन्न होता है। जब आकाश भगवान् की दृष्टि की परिधि में, काल, माया और जीव के साथ आया, तो ये संयुक्त होकर स्पर्श की अनुभूति उत्पन्न करते हैं — और स्पर्श, जब वह अपने रूपान्तरण से गुज़रा, वायु तत्त्व को विकसित करता है।

अत्यन्त शक्तिशाली वायु, बदले में, जब वह रूपान्तरण से गुज़री, आकाश के साथ संयुक्त होकर रूप की अनुभूति उत्पन्न करती है, और रूप से अग्नि विकसित हुई, जगत् की प्रकाशक। अग्नि, जब वह भगवान् की दृष्टि की परिधि में आई और रूपान्तरण से गुज़री, वायु के साथ, काल, माया और जीव के साथ भी संयुक्त होकर, जल उत्पन्न करती है, जो रस का विकार है। और जल, जब वह सर्वद्रष्टा ब्रह्म की दृष्टि में आया और रूपान्तरण से गुज़रा, अग्नि के साथ, पुनः काल, माया और जीव के साथ, संयुक्त होकर पृथ्वी को विकसित करता है, जिसकी विशेष विशेषता गन्ध है।

मैत्रेय फिर सम्पूर्ण क्रम के पीछे एक शासित सिद्धान्त बताते हैं, विदुर को पुनः सीधे सम्बोधित करते हुए: आकाश से आरम्भ होने वाले तत्त्वों में से — आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी — इस विकास-क्रम में जो तत्त्व बाद में प्रकट होता है, उसे उतने ही अधिक गुणों वाला समझा जाना चाहिए; क्योंकि प्रत्येक कार्य स्वाभाविक रूप से अपने कारण की विशेषताओं को, अपनी स्वयं की विशेषताओं के साथ, विरासत में प्राप्त करता है।

आधिष्ठाता देवगण, अकेले कार्य करने में असमर्थ, भगवान् की ओर मुड़ते हैं

तत्त्वों के इस प्रकार प्रकट होने के साथ, मैत्रेय महत्तत्त्व तथा सृष्टि की अन्य श्रेणियों के अधिष्ठाता देवताओं की ओर मुड़ते हैं। ये देवगण, वे स्पष्ट करते हैं, काल, माया और जीव की विशेषताओं को साझा करते हैं — अर्थात् रूपान्तरण, विक्षेप और चेतना — और, सत्य में, स्वयं भगवान् विष्णु की किरणों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। और फिर भी, जब ब्रह्माण्ड की सृष्टि का कार्य पूर्ण करने का क्षण आया, तो वे स्वयं ऐसा करने में असमर्थ पाए गए, ठीक अपनी विषमता के कारण — उनके भिन्न-भिन्न स्वभावों में साथ मिलकर कार्य करने के लिए आवश्यक समन्वय का अभाव था। और इसलिए, मैत्रेय विदुर को बताते हैं, इन देवताओं ने हाथ जोड़कर सर्वशक्तिमान् भगवान् से प्रार्थना की।

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।

नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥ ३८ ॥

ete devāḥ kalā viṣṇoḥ kālā-māyāṁśa-liṅginaḥ nānātvāt sva-kriyānīśāḥ procuḥ prāñjalayo vibhum

अर्थ: तत्त्वों के ये अधिष्ठाता देवगण, जो स्वयं भगवान् विष्णु की किरणें हैं, काल और माया के अंश से देहधारी होकर, अपनी ही विविधता के कारण अपने-अपने कार्य करने में असमर्थ, हाथ जोड़कर सर्वव्यापी भगवान् को सम्बोधित किया। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, गीता प्रेस संस्करण का श्लोक 37)

सृजनात्मक दृष्टि के लिए देवताओं की प्रार्थना

इसके बाद देवगण भगवान् से जो कहते हैं वह इस अध्याय के समापन तथा, कई प्रकार से, सबसे भक्तिपूर्ण अंश का निर्माण करता है। वे, वे उनसे कहते हैं, उनके चरण-कमलों को नमन करते हैं — वे चरण जो याचक की व्यथा को उसी प्रकार शान्त करते हैं जैसे एक छाता सूर्य की उष्णता से राहत देता है, और जिनके तलवों की शरण लेने से प्रयासरत मनुष्य सांसारिक अस्तित्व के अन्तहीन दुःखों को सरलता से दूर भगा देते हैं। इस संसार में जीव, वे कहते हैं, कभी मन की शान्ति का अनुभव नहीं करते, त्रिविध ताप से पीड़ित होकर; इसीलिए, हे भगवान्, वे उनके चरणों की छाया की शरण लेते हैं, जो स्वयं ज्ञान का आश्रय है।

वे उन्हीं चरणों को पवित्रता के आश्रय के रूप में वर्णित करते हैं, जिन्हें ऋषिगण एकान्त में वैदिक मन्त्रों की सहायता से खोजते हैं, जो, वे कहते हैं, उनके मुख-कमल में घोंसला बनाने वाले पक्षियों के समान हैं — वे चरण जो, इसके अतिरिक्त, गंगा के स्रोत भी हैं, समस्त नदियों में श्रेष्ठ, जिनका जल मनुष्य के पापों को धो देने की शक्ति रखता है। इन्हीं चरण-कमलों का हृदय में चिन्तन करके — एक ऐसा हृदय जो श्रद्धा और भक्ति द्वारा, दिव्य नामों तथा महिमा को सुनने और जपने के रूप में, शुद्ध किया जाता है — भगवान् के भक्तगण, वे कहते हैं, वैराग्य से सुदृढ़ ज्ञान की सहायता से अपने मन पर नियन्त्रण पाने में सफल होते हैं।

देवगण फिर अपनी प्रार्थना के वास्तविक उद्देश्य की ओर मुड़ते हैं: भगवान्, वे स्वीकार करते हैं, ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और संहार के लिए ही भौतिक जगत् में अवतरित हुए हैं, और वे भी, उनके चरण-कमलों की शरण लेते हैं, जो, ध्यान किए जाने पर, अपने उपासकों को निर्भयता प्रदान करते हैं। वे उन चरणों को उन मनुष्यों के लिए अगम्य बताते हैं जो अपने ही क्षीण शरीर तथा निवास के साथ, और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों तथा वस्तुओं के साथ, गहरी परन्तु मिथ्या पहचान रखते हैं, उन्हें या तो अपना ही स्वरूप या अपना ही समझते हुए — यद्यपि भगवान् स्वयं अन्तर्यामी के रूप में उनके अपने ही शरीर (हृदय) में निवास करते हैं। जिनका आन्तरिक मन उन इन्द्रियों द्वारा भटका दिया जाता है जो सदैव संसार की अयोग्य वस्तुओं के मध्य विचरण करती हैं, वे कहते हैं, हे विशाल यशस्वी सर्वेश्वर! वे निश्चय ही उन भक्तों को देखने में असमर्थ

हैं जिन्हें आपके सुन्दर चरण-चिह्नों की शोभा निहारने का सौभाग्य प्राप्त है। इसके विपरीत, वे, हे भगवान्, जिनका हृदय आपकी कथाओं के अमृत का पान करने से तीव्र हुई भक्ति द्वारा शुद्ध हो चुका है, उस आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि को यथोचित प्राप्त करते हैं जिसका सार वैराग्य में निहित है, और सरलता से आपके नित्य धाम, वैकुण्ठ, तक पहुँच जाते हैं। अन्य ज्ञानीजन भी, वे जोड़ते हैं, जो आत्म-चिन्तन में संकेन्द्रित योग के बल से आपकी अत्यन्त शक्तिशाली प्रकृति (माया) पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, निःसन्देह अन्ततः आप, परम आत्मा, में प्रवेश कर जाते हैं — यद्यपि उनका मार्ग अत्यन्त कठिन है, जबकि आपकी आराधना करने में कोई कठिनाई ही नहीं है।

अन्ततः, देवगण अपनी वास्तविक याचना पर पहुँचते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि वे स्वयं भगवान् द्वारा, एक के बाद एक, उन तीन गुणों की सहायता से सृजित किए गए हैं जो उनके ही स्वभाव को निर्मित करते हैं, इस उद्देश्य से कि वे ब्रह्माण्ड को विकसित करने में सहायक बनें — और फिर भी, ऐसे विविधतापूर्ण स्वभाव से युक्त होने के कारण, वे एक-दूसरे से पृथक्, स्वतन्त्र, और इसलिए इस कार्य को पूर्ण करने के लिए आवश्यक संयुक्त कार्रवाई करने में असमर्थ बने रहते हैं। वे अजन्मा भगवान् से यह अनुरोध करते हैं कि वे कोई ऐसा साधन उपलब्ध कराएँ जिससे वे, मिलकर, उन्हें पूर्ण ब्रह्माण्ड को उनकी भावी लीलाओं के उपयुक्त मंच के रूप में अर्पित कर सकें, और जिससे आने वाले सभी प्राणी भी बिना किसी बाधा के जीविका और आहार प्राप्त कर सकें। वे ही अकेले, वे स्वीकार करते हैं, वह अपरिवर्तनीय आदि पुरुष, देवताओं तथा सृष्टि के अन्य सभी विकारों का सच्चा और प्रमुख कारण हैं; वे ही थे जिन्होंने प्राचीनकाल में चेतन जीव के बीज को अपनी ही शक्ति, माया, के गर्भ में स्थापित किया था। और इस प्रकार, अध्याय के अन्तिम श्लोक में, वे सीधे और सरलता से पूछते हैं कि वे उनके लिए और क्या कर सकते हैं, क्योंकि यही वह उद्देश्य है जिसके लिए वे जन्मे हैं — और वे उनसे, उनकी कृपा पर ही निर्भर रहते हुए, प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें अपनी दिव्य दृष्टि, सृष्टि के महान् कार्य में सफलता के लिए आवश्यक सृजनात्मक शक्ति के साथ, प्रदान करें।

ततो वयं मत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।

त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ५१ ॥

*tato vayanṁ mat-pramukhā yad-arthe babhūvimātman karavāma kiṁ te tvaṁ naḥ sva-cakṣuḥ
paridehi śaktyā deva kriyārthe yad-anugrahāṇām*

अर्थ: अतः, हे परमात्मा, हमें बताइए — जो हम इसी उद्देश्य के लिए जन्मे हैं — हमें आपकी और सेवा के लिए क्या करना चाहिए; कृपया अपनी ही शक्ति से हमें अपनी वह दृष्टि प्रदान करें, हे भगवान्, सृष्टि के कार्य के लिए आवश्यक अनुग्रह के साथ। (स्कन्ध 3, अध्याय 5, गीता प्रेस संस्करण का श्लोक 50)



अपने संयुक्त प्रयास से सृष्टि का कार्य पूर्ण करने में असमर्थ, तत्त्वों के नवसृजित रक्षक देवगण हाथ जोड़कर भगवान् से सृजनात्मक दृष्टि तथा अनुग्रह की प्रार्थना करते हैं
(श्लोक 37-50)।

अध्याय इस विनम्र याचना के स्वर पर समाप्त होता है — ब्रह्माण्ड के नवसृजित रक्षक देवगण, भगवान् की प्रत्यक्ष कृपा के बिना अपने ही सौंपे गए कार्य को पूर्ण करने में असमर्थ, उन्हें केवल जुड़े हुए हाथ और सेवा करने का मार्ग दिखाने की याचना अर्पित करते हैं।

इस प्रकार तृतीय पुस्तक के महान् एवं गौरवशाली भागवत-पुराण, जो परमहंस-संहिता के नाम से भी जाना जाता है, में पंचम अध्याय समाप्त होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. गहनतम प्रश्न सबसे सरल अवलोकनों से उत्पन्न होते हैं। सृष्टि की प्रकृति में विदुर की सम्पूर्ण जिज्ञासा एक सरल, ईमानदार स्वीकारोक्ति से आरम्भ होती है: कि सामान्य सकाम कर्म वह सुख कभी नहीं देता जिसका वह वचन देता है। इस अध्याय का सबसे भव्य ब्रह्माण्ड-विज्ञान एक पूर्णतः व्यावहारिक, सार्वभौमिक मानवीय कुण्ठा में जड़ा हुआ है (श्लोक 2)।
2. भगवान् की कथाओं की भक्ति स्वयं में एक पूर्ण मार्ग है। विदुर स्वयं को “अन्य सभी धर्मों से ऊब चुका” घोषित करते हैं — कर्तव्य के प्रति अनादर से नहीं, बल्कि इसलिए क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसा चख लिया है जो तुलना में अन्य सभी छोटे आनन्दों को असन्तोषजनक बना देता है: श्रीकृष्ण की कथाओं का अमृत, जो अकेला ही सांसारिक बन्धनों को काट सकता है (श्लोक 10-11)।
3. ब्रह्माण्ड भगवान् की एकाकिता में आरम्भ होता है, पदार्थ में नहीं। किसी भी सृष्टि से पूर्व, केवल भगवान् थे — पूर्ण, समग्र, और चेतनतः जाग्रत, यद्यपि उनकी क्रिया-शक्तियाँ सुप्त पड़ी थीं। सृष्टि उनके बाहर किसी वस्तु का प्राकट्य नहीं है; यह उनकी अपनी ही सत्ता के भीतर उनकी अपनी ही शक्तियों का स्पन्दन है (श्लोक 23-24)।
4. ब्रह्माण्ड के रक्षक देवगण भी भगवान् की कृपा के बिना कार्य नहीं कर सकते। तत्त्वों के अधिष्ठाता देवगण, स्वयं भगवान् विष्णु की किरणें होते हुए भी, अपने संयुक्त प्रयास से सृष्टि का कार्य पूर्ण नहीं कर सकते — यह एक विनम्र स्मरण है कि ब्रह्माण्ड की कोई भी शक्ति, चाहे कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, भगवान् की स्वीकृति के बिना कार्य नहीं करती (श्लोक 37, 47)।

5. प्रार्थना, आदेश नहीं, देवताओं का प्रथम आश्रय है। ब्रह्माण्ड की सृष्टि और शासन के लिए उत्तरदायी प्राणी भी अपनी सीमा का उत्तर कुण्ठा से नहीं, अपितु हाथ जोड़ी हुई याचना से देते हैं — भगवान् के चरणों को स्वयं एक तीर्थ, त्रिविध दुःखों से आश्रय बताते हुए, और स्वतन्त्र सामर्थ्य नहीं अपितु केवल वह सृजनात्मक दृष्टि तथा कृपा माँगते हुए जिसके बिना वे अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकते। यह प्रत्येक पाठक के लिए उस मुद्रा का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसे वास्तविक असहायता के किसी भी क्षण में अपनाया जाना चाहिए (श्लोक 38-50)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के आकार में कुछ ऐसा है जो शान्तिपूर्वक हृदय को छूता है। यह एक आत्मा के निजी शोक से आरम्भ होता है — विदुर, जो अभी भी उन सब से गुजर रहे हैं जो उन्होंने देखा और खोया है, एक पावन स्थान पर पहुँचकर एक ऋषि से वह प्राचीनतम प्रश्न पूछते हैं: मनुष्य वास्तव में सुखी कैसे बनता है? और यह एक ऐसे ब्रह्माण्ड के साथ समाप्त होता है जो नवसृजित देवताओं से भरा है, सामान्य समझ से परे शक्तिशाली, जो स्वीकार करते हैं कि वे भी अपना कार्य उसी हाथ जोड़ने की मुद्रा में, उसी एक भगवान् की ओर मुड़े बिना पूर्ण नहीं कर सकते। इन दोनों क्षणों के मध्य सृष्टि का सम्पूर्ण वृत्तान्त निहित है — माया का प्राकट्य, ब्रह्माण्डीय पुरुष का अवतरण, सार्वभौमिक बुद्धि का जागरण, अहंकार का तीन रूपों में विभाजन, और पंच महाभूतों का एक के बाद एक इस प्रकार आकार लेना जैसे स्वर मिलकर एक राग रचते हैं। और फिर भी मैत्रेय की वास्तविक शिक्षा, इस सम्पूर्ण जटिल ब्रह्माण्ड-विज्ञान के माध्यम से शान्तिपूर्वक पिरोई हुई, पहली बार में जितनी प्रतीत होती है उससे कहीं अधिक सरल हो सकती है: चाहे आप नदी-तट पर एक शोकाकुल मनुष्य हों या एक ब्रह्माण्ड बनाने का भार वहन करने वाला देवता, न-जानने का ईमानदार उत्तर एक ही है — भगवान् की ओर मुड़ें, और पूछें।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने जीवन में उस स्थान को पहचानें जहाँ आप, इस अध्याय के देवताओं की भाँति, आंशिक रूप से सक्षम हैं परन्तु अपने समक्ष के पूर्ण कार्य को पूरा करने में असमर्थ हैं — एक उत्तरदायित्व जिसे आप आरम्भ तो कर सकते हैं परन्तु अकेले पूर्ण नहीं कर सकते। इस मामले को केवल प्रयास से बलपूर्वक हल करने के बजाय, इस अध्याय के अन्त में दिए गए उदाहरण का अनुसरण करें: अपने हाथ जोड़ें, जिस भी शान्त तरीके से यह आपके लिए सम्भव हो, और सरलता से उस दृष्टि तथा शक्ति की याचना करें जिसकी आपमें कमी है, यह विश्वास करते हुए कि वही कृपा जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को गति में स्थापित किया, आपके लिए भी उपलब्ध है। अपने दिन में लौटने से पहले, रुकें और शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को, एक क्षण के लिए, अपनी ही हाथ-जोड़ी हुई प्रार्थना बनने दें — इस अध्याय के महानतम प्राणियों द्वारा अपने भगवान् की ओर मुड़ने की उसी मुद्रा की एक छोटी प्रतिध्वनि।

निष्कर्ष

तृतीय पुस्तक का पंचम अध्याय भागवत की उद्धाटित होती कथा में एक वास्तविक मोड़ चिह्नित करता है। विदुर का व्यक्तिगत शोक और खोज, चार पूर्व अध्यायों में वहन किया गया, अब मैत्रेय में अपना उपयुक्त गुरु पाता है — और मैत्रेय का उत्तर, सरल सान्त्वना देने के बजाय, बाहर की ओर, अस्तित्व की वास्तविक संरचना में ही खुलता है: सृष्टि से पूर्व अकेले भगवान्, माया का स्पन्दन, पुरुष का अवतरण, ब्रह्माण्डीय बुद्धि का जन्म, त्रिगुणात्मक अहंकार, पंच तत्त्व, और अन्ततः देवताओं की अपनी विनम्र स्वीकारोक्ति कि वे भी जो आरम्भ हुआ है उसे पूर्ण करने के लिए भगवान् की कृपा की आवश्यकता रखते हैं। यह एक ऐसा अध्याय है जो पाठक से दो वस्तुओं को साथ धारण करने की माँग करता है — एक

मनुष्य की आध्यात्मिक व्याकुलता की आत्मीयता, और अभी भी निर्मित हो रहे एक ब्रह्माण्ड की विशालता — और दोनों में, एक ही सत्य को देखने की: कुछ भी सृजित, पालित, या पूर्ण नहीं होता सिवाय भगवान् की अपनी कृपा से, सदैव भक्ति के माध्यम से मांगा गया, और सदैव प्रार्थना के माध्यम से।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

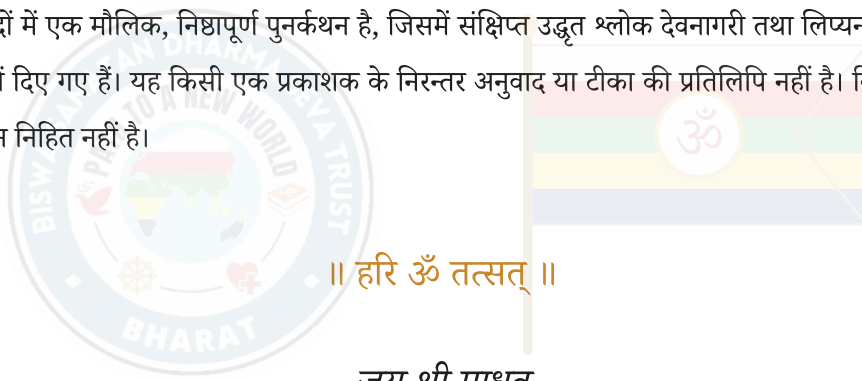
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, पंचम अध्याय, पृष्ठ 151–156।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता या समर्थन निहित नहीं है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-5-the-sage-maitreya-describes-the-process-of-creation-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट